ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-11* December (Supplementary Issue)-2017
Innovation The Research Concept

मानवाधिकार : दलितों के विशेष सन्दर्भ में एक समीक्षात्मक अध्ययन

अनिल कुमार
व्याख्याता,
भौतिक विज्ञान विभाग,
शा. बांगड़ महाविद्यालय,
डीडवाना, राजस्थान

सारांश

व्यापक रुप में मानवाधिकार व्यक्ति के ऐसे अधिकारों को समझा जा सकता है, जो व्यक्ति के जीवन के लिए अति आवश्यक है तथा जिनके अभाव में व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक अपना गरिमामय जीवन व्यतित नहीं कर सकता है। यह मानवाधिकार व्यक्ति के सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास अर्थात संपूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए जरुरी है। पारिभाषिक मतभेदों में उलझे बिना सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि मानवाधिकार वह आधारभूत अधिकार है, जो प्रत्येक व्यक्ति को मानवोचित गुण होने के कारण मिलने चाहिए। इस संदर्भ में मानवाधिकार बिना भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी प्रदान करता है।

मुख्य शब्द : मानवाधिकार, सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास।

प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय समुदाय और राज्यों के अंतर्गत सभी संगठित समाजों के आवश्यक तत्वों का निर्माण व्यक्ति ही करता है। आधुनिक समाज के संगठन में राज्य का एक आवश्यक कार्य संपूर्ण व्यक्तिगत सुरक्षा की व्यवस्था करना तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए परिस्थितियों को निर्मित करना हैं, और भविष्य में भी राज्य का यही आवश्यक कार्य रहना चाहिये।

मानवाधिकार का प्रश्न कई कारणों से एक प्राचीन तर्क का विषय है। अधिकांश मूल सिद्वान्त निःसन्देह सत्ता के अंतर्गत व्यक्ति से व्यक्ति के संबन्धों और व्यापक रुप से बाकी समाज से उसके सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं। यदि एक व्यक्ति के पास मानवाधिकार है तो वह समाज के अन्य हिस्सों के व्यक्तियों के मूल अधिकारो के लिये दावा करने के लिए अधिकृत हैं और यदि किसी कार्य को करने से व्यक्ति की गरिमा को क्षति पहुंचती है तो वह उस कार्य को भी निर्णायक तरीके से रोक सकता है। पूरे इतिहास में हर जगह, हर स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति और उसके सामाजिक सम्बन्धों में निहित मूल्यों और गुणों को मानवीय गुणों की गरिमा की अवधारणा के रुप में समझा गया है।

मानवाधिकार स्वयं एक सामाजिक साध्य है और यह वैधानिक व्यवस्था हमें बताती है की किस समय में कौन सें अधिकार समाज में अधिक महत्वपूर्ण समझे जाते है। अगर मानवाधिकारों के विचारों को उल्लंघन समझा जाता है तो लोगों की यह मान्यता है कि राज्य अधिकारों का उलघंन नही कर सकता। इस आदर्श को समझना चाहिये अर्थात कानून व्यवस्था में अधिकारों की नियमावली का निर्माण किया जाना चाहिये। मानवाधिकारों की अवधारणा विशेष रुप से भेदभाव की मनाही की अवधारणा है परन्तु यदि हम मानव इतिहास के पन्नों को उलट कर देखें तो हम पाते हैं की मानवाधिकारो का मूल सिद्धान्त व्यक्तियों के बीच भेदभाव की मनाही के सर्वव्यापी सिद्धान्त के रुप में सदैव स्वयंसिद्व नहीं हो रहा है। विशिष्ट वर्ग और साधारण व्यक्ति के बीच मौलिक अधिकारों और स्वतंन्त्रता के प्रति आग्रह को लेकर निरन्तर विवाद की स्थिति बनी रही है। अव्यवहारिक सिद्धान्तों और उनके उपयोग और कार्यान्वयन के व्यवहार और सिद्धान्त की निरन्तर वास्तविकता के बीच सदैव एक व्यापक दूरी बनी रही है।

साहित्यावलोकन

डेविड सेलिबी के अनुसार, "विश्व में प्रत्येक व्यक्ति मानव होने के नाते मानवाधिकारों का उपयोग करता है, मानवाधिकार कमाये नहीं जाते और न ही किसी के द्वारा प्रदान किये जाते हैं और न ही किसी समझोते के द्वारा इनका निर्माण किया जा सकता है"। यह अधिकार प्रत्येक व्यक्ति से सम्बन्धित होते हैं। ए ए सईद के अनुसार, मानव अधिकार व्यक्ति की गरिमा से सम्बन्धित हैं। व्यक्तिगत पहचान का स्तर आत्म–सम्मान को संरक्षित करता हैं और मानवीय

समुदाय को बढावा देता हैं। प्लेनो और ऑलटन लिखते हैं की मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो व्यक्ति के जीवन, अस्तित्व और व्यक्तिगत विकास के लिए सर्वाधिक आवश्यक समझे जाते है। स्कॉट डेविडसन के अनुसार, मानवाधिकार की अवधारणा राज्य द्वारा व्यक्ति की सुरक्षा के लिए किये गये कार्य से निकटता से जुड़ी हुई है यह राज्य द्वारा निर्मित उन सामाजिक परिस्थितियों और जीवन को विभिन्न क्षेत्रों की ओर भी संकेत करती हैं जिसके अंतर्गत व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके।

अध्ययन का उद्देश्य

1. दलितों की समस्याओं का अध्ययन करना।
2. दलितों के पिछड़ने का कारण एवं इनके अधिकारों के प्रति जागरुक करना।
3. दलितों की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति का आंकलन कर उनकी अधिकारों के प्रति सचेत करना।
4. समाज में दलितों को सम्मानजनक स्थिति प्राप्त करवानें का प्रयास करना।
5. समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय के प्रति दलितों को जागरुक करते हुए समाज में इनकी स्थिति को सदृढ करने का प्रयास करना।
6. आरक्षण को उचित ठहराते हुये आरक्षण का सभी दलितों को लाभ दिलवानें की चेष्टा करना।

मानवाधिकार एवं दलित वर्ग

मौलिक या आधारभूत मानवाधिकार या व्यक्ति के प्रतिक या अहस्तांतरणीय अधिकारों की अवधारणा एक परिवर्तनशील और प्रगतिशील अवधारणा बन चुकी है। वास्तव में यह अवधारणा पीढी दर पीढी भिन्न–भिन्न और निरन्तर बदलती हुई परिस्थितियों के अंतर्गत विकसित होती रही है। कोई भी अधिकार पूर्ण और असीमित नहीं हो सकता और न ही कोई अधिकार पूर्णतया अपरिवर्तनीय, सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितयों से परे हो सकता है। यद्यपि एक समान समाजों में भी निरन्तर बदलती परिस्थितियों के अनुसार अधिकारों का स्वरुप भिन्न हो सकता है परन्तु इसका अर्थ मानवाधिकार के विशेष परिस्थितियों मे विशेष लोगों को विशेष अधिकार और कर्तव्य की प्राप्ति होती है। मानव अधिकार सामान्य व सर्वव्यापी हैं यह सबको प्राप्त होने चाहिये और इनका सम्बन्ध किसी विशेष स्थिति से नहीं होना चाहिये। मानवाधिकारों की प्रकृति में विशेषाधिकार का कोई अर्थ नहीं है। विभिन्न परिस्थितियों मे विभिन्न मुद्धों क्या होना चाहिये? इन प्रश्नों का विस्तार मानवाधिकारो के लागू करने की स्थितियों पर सीमायें लगाते हैं। मानवाधिकार व्यक्ति और समाज, समूहों, अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों सबके अधिकार है। इस बात पर वास्तव में ध्यान देना चाहिये की 1945 से मानवाधिकार की धारणा ने पाश्चात्य इतिहास और अंर्तराष्ट्रीय सम्बंधो में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है परन्तु अभी भी कोई इन अधिकारों की वास्तविक उत्पत्ति और प्रकृति से संबंधित प्रश्नों की विश्वसनीय व्याख्या नहीं कर सका है। जहाँ एक ओर यह कहा जाता है की मानवाधिकारों की धारणा का जन्म ब्रम्हविद्या, दर्शन और कानून से हुआ था वहीं पाश्चात्य विचारकों के अनुसार प्राकृतिक अधिकारों की अवधारणा का विकास सबसे पहले सम्पति के ईसाई सिद्धान्तो को स्पष्ट करने के लिये हुआ था। 17 वीं शताब्दी में पूर्ण निरंकुश शासन व सम्पति के अधिकार को आलोचना से बचाने के लिये आज नागरिक और राजनीतिक अधिकार कहे जाने वाले, अधिकारों का जन्म हुआ था। इन अधिकारों की अवधारणा व्यक्ति के आपस में व्यवहार के इस मानकीकरण का विस्तार किया गया है अर्थात् मानवाधिकारों का प्रारम्भ इस बात के निर्धारण के लिये हुआ कि सरकार को कौन से कार्य करने चाहिये और कौन से कार्य नहीं करने चाहिए। कुछ विचारकों का मत है कि 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से पूर्व मानवाधिकारों का इतिहास नाममात्र का था फिर भी सामान्य विचार यही है की आज के मानवाधिकारों की अवधारणा का एक लम्बा इतिहास रहा है। कुछ विचारकों का मानना है की इनका जन्म पश्चिम में हुआ था और द्वितीय विश्वयुद्व के बाद हाल ही में इनका स्वरुप सार्वभौमिक हुआ है। इन विभिन्न मान्यताओं के बावजूद सबसे अधिक मान्यता है कि मानवाधिकारों का जन्म पश्चिमी राज्यों से हुआ था।

दुसरे विश्व युद्व के बाद हिंसा को रोकने और विश्व के पुननिर्माण के लिये मानवाधिकारो की घोषणा की गई। युद्व जनित विवादों और अतीत के विवादों के निरीक्षण के बाद पता चला की मानवाधिकारों की रक्षा, हिंसा के स्तर और समाज में व्याप्त दमन तथा उनकी आर्थिक और राजनीतिक स्थिरता के बीच निकटता का सम्बन्ध है जो एक जटिल सम्बन्ध है। औद्योगिकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रिया से आर्थिक और सामाजिक पुनर्वितरण द्वारा अहिंसा में सहायक परिस्थितियों का निर्माण हो सकता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में पश्चिमी यूरोप, अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया में शांति और समृद्वि की परिस्थितियों का निर्माण हो सकता है परन्तु बाकी विश्व के लिए भी यही परिणाम हो यह आवश्यक नहीं है।

संविधान के अनुच्छेद 46 में इस सन्दर्भ में इस प्रकार से उल्लेख किया गया है–"राज्य जनता के दुर्बलतर अंगो के, विशेषतयां अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से रक्षा करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा"। इसक अन्तर्गत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के अतिरिक्मत भी कुछ वर्गों को शामिल किया गया हैं। किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि कौन से वर्ग होगें।

एम. डी. देसाई, जी.डी. रामाराव, बी. एस. मिन्हास, जी. पार्थसाथी एवं योगेश अटल आदि अर्थशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों में कमजोर वर्ग को परिभाषित करने के लिए मुख्य रुप से आर्थिक,सामाजिक मापदण्ड निर्धारित किया है। इन विद्वानो के अनुसार कमजोर या दुर्बल वर्ग के अन्तर्गत निम्नांकित विशेषताओं वाले व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है–

1. वे व्यक्ति जो अपने जीवन की न्युनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा न कर सकें। भोजन ,वस्त्र, आवास तथा चिकित्सा की सुविधाएँ जुटाने में असमर्थ हों और उनकी आय निर्धनता रेखा से बहुत नीचे हो।

2. वे व्यक्ति जो मुख्यतयां दैनिक मजदुरी पर ही आश्रित हों और वह भी अनियमित तथा ऋतुओं के परिवर्तन पर आश्रित हों।
3. वे व्यक्ति जिनके उत्पादन में सक्रिय सहयोग प्रदान करने के उपरान्त भी निरन्तर श्रम का शोषण किया जाता रहा हो और जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋणग्रस्त हों।
4. वे व्यक्ति जिनके पास इतनी लागत पुँजी नहीं कि वे कच्चे माल तथा अन्य उत्पादित वस्तुओं को खरीद सकें।
5. लघु तथा सीमान्त कृषक जो सिंचाई आदि की सुविधाओं से वंचित हो।
6. वे व्यक्ति जो मानवीय ऊर्जा (जिसमें परिवार के सदस्य कार्य करें) तथा पशु ऊर्जा के सहारे ही जीवन यापन करें।

"मोतिलाल गुप्ता, भारत में समाज" राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर चौदहवां सशोंधित संस्करण2009,पृ 237–238 एक सूत्र में बताया गया है कि शूद्रो को अपना निर्वाह केवल उच्च वर्गो की सेवा करके करना पड़ता हैं। निम्नलिखित तथ्य उभरते हैं–

1. शूद्र(दास या दलित) अनार्थ और शूद्र को वर्ण के अर्थ में नही समझा जाता था।
2. उनकी स्थिति धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक आदिकाल से ही निम्न थीं।
3. आदिकालों(वेद, ब्राम्हण तथा सूत्र) में वे अस्पृश्य नही थे।
4. पवित्रता का विचार ही चाहे व्यसवसायिक या सांस्कृतिक ब्राम्हणकाल से अस्पृश्यता के विचार एवं प्रचलन का आधार रहा है। (मोतिलाल गुप्ता, भारत में समाज" राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर चौदहवां सशोंधित संस्करण 2009, पृ 239)

अनुसूचित जाति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1935 में साइमन कमीशन द्वारा किया गया था। इस शब्द का प्रयोग अस्पृश्य लोगों के लिए किया गया। अम्बेडकर के अनुसार आदिकालीन भारत में इन्हे"भग्न पुरुष" माना जाता था। 1931 की जनगणना में इन्हे बाहरी जाति के रुप में सम्बोधित किया गया। महात्मा गांधी ने उन्हें 'हरिजन' के नाम से पुकारा। ("मोतिलाल गुप्ता, भारत में समाज" राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर चौदहवां सशोंधित संस्करण 2009, पृ 239)

दलित और अनुसूचित जातियां भारतीय समाज के कमजोर वर्गों में से एक हैं और इन वर्गों के मानवाधिकारों का हनन आज भी निरंतर हो रहा है। भारतीय संविधान में कमजोर वर्गों के संरक्षण के प्रावधान किए गए हैं और राज्य भी इनके संरक्षण और विकास के लिए सकारात्मक कदम उठा रहें हैं, परन्तु फिर भी इन वर्गों का उत्पीड़न जारी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद–17 में किसी भी प्रकार के भेदभाव को निषेद्य किया गया है, जिसके आधार पर संसद द्वारा अस्पृश्यता अधिनियम,1955 बनाया गया। भारतीय दंड संहिता के सामान्य कानून भी अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के साथ किए जाने वाले अपराध सिद्ध हुए हैं। भारतीय संसद ने 1989 में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम के नाम से एक प्रस्ताव पारित किया। संसद द्वारा पारित अधिनियम अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के उत्पीड़न को कारगर तरीके से रोक नहीं पाए हैं और इनका उत्पीड़न समाज के विभिन्न हिस्सों में अब भी जारी है। सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण मंत्रालय की रिर्पोट में दलित समुदाय के विरुद्ध किए गए अपराध के लगभग 630 मामले दर्ज थे। 1981 से 1997 तक के आंकड़ो के अनुसार अनुसूचित जाति से सम्बन्ध रखने वाले लगभग 508 लोगों की हत्या की गई, लगभग 2550 लोग घायल हुए, लगभग 900 लोग आगजनी का शिकार हुए, लगभग 750 लोग शारीरिक हिंसा से पीड़ित थे। और वार्षिक आधार पर औसतन 12000 लोग अन्य अपराधों के शिकार थे।

संविधान निर्मात्राओं ने दलितों के लिए इस प्रकार के संरक्षणात्मक भेदभाव से यह आशा की कि इससे सभी समस्याओं का समाधान हो सकेगा, परन्तु इससे कुछ समस्याओं का ही समाधान हो सका हैं आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त गैर आर्थिक समस्याएं भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह माना जाता है कि सामाजिक–सांस्कृतिक की तुलना में आर्थिक समस्याएं अधिक महत्वपूर्ण हैं। और दोंनो का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा आर्थिक समस्याओं के समाधान से अन्य सभी समस्याओं का समाधान हो सकेगा। हमारे समाज में जातिय जटिलताएँ विद्यमान है तथा अस्पृश्यता अभी भी दलितों की एक केन्द्रीय समस्या है। इस समस्या के समाधान के बारे में सोचने से पूर्व अस्पृश्यता की प्रकृति, कारण और विस्तार को समझना आवश्यक हैं। आई.पी.देसाई (1976) ने अस्पृश्ता का मुख्य रुप से दो क्षेत्रों में निरीक्षण किया हैं।

निजी क्षेत्र

जो प्रथाओं से परिचालित होता है।

सार्वजनिक क्षेत्र

जो कानुन से परिचालित होता हैं।

देसाई के अध्ययन के अनुसार, अपृश्यता धार्मिक और घरेलू क्षेत्र में प्रबल रुप से विद्यमान हैं, जबकि व्यवसायिक क्षेत्र में यह शक्तिशाली नहीं हैं और इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र में यह समस्या नहीं है।

उपरोक्त संरक्षणात्मक उपायों के अतिरिक्त दलितों के लिए आरक्षण तथा प्रतिनिधित्व के प्रावधान भी किए गए हैं। राजनीतिक आरक्षण,सरकारी नौकरियों में आरक्षण,शैक्षिक संस्थानों में दाखिला तथा अन्य विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षण की व्यवस्था की गई हैं। ताकि अनूसुचित जाति तथा जनजातियों के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों में सहभागिता तथा इन वर्गों के विकासात्मक उपायों को सुनिश्चित किया जा सकें। परन्तु समस्या यह है कि इस प्रकार के उपायों से निजी तथा सामाजिक क्षेत्र के भेदभावों को समाप्त नहीं किया जा सकता है। दलितों की स्थिति अभी भी संतोषजनक नहीं है। 1991 की जनगणना में दलितों की साक्षरता दर 37.41 प्रतिशत थी, जो राष्ट्रीय औसतन 52.21 प्रतिशत से बहुत कम हैं। निजी रोजगार, स्कुल छोड़ने की दर, साक्षरता, स्वास्थ्य,उच्च शिक्षा या फिर सरकारी नौकरी प्रत्येक क्षेत्र में दलितों की स्थिति सोचनीय है। दलित मुख्य रुप से भूमिहीन है, यदि कुछ दलितों के पास भूमि है भी तो यह

नाममात्र की है तथा निम्न स्तर की अनुपजाऊ भूमि है। दलित श्रमिकों की एक बड़ी संख्या आर्थिक क्षेत्र में खेती कार्यों से संलग्न है। दलितों की आय तथा उपभोग का स्तर निम्न है और गरीबी का स्तर बहुत उच्च है।

दलितों के अधिकारों की प्राप्ति के लिये सुझाव

दलितों के अधिकारों के हनन को रोकने के लिये निम्नलिखित प्रयास बहुत जरूरी है जिसमें वे अपने जीवन स्तर में सुधार कर सके और अच्छे जीवन की प्राप्ति कर सकें।

आर्थिक दृष्टि से सुधार हो

आर्थिक दृष्टि से जर्जर होते दलितों के लिये सरकारों व उच्च वर्गों को इस प्रकार का कार्य करना चाहिये, जिससे दलितों को भी गरीबी रेखा के जीवन स्तर से ऊपर उठ सके और इस प्रकार रोजगार का सृजन किया जाये,जिससे कि सभी को लाभ हो,रोजगार में भाई–भतीजावाद, भ्रष्टाचार इत्यादी का प्रयोग न हो, जिससे उच्च वर्गों और दलितों के बीच शांत वातावरण बना रह सकें। जब तक इनका आर्थिक दृष्टि से सुधार नहीं होगा। तब किसी भी प्रकार के अधिकारों की कल्पना नहीं की जा सकती है।

शैक्षणिक एंव प्रशैक्षणिक दृष्टि से सुधार हो

जब तक दलितों में शिक्षा का अभाव रहेगा तब तक उनमें जागरूकता नहीं आ सकेगी। दलितों में शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक दलित स्वंय अपना व अपने बच्चे को शिक्षा दिलवाने के प्रति सचेत रहे। सरकारों को भी प्रयास करना चाहियें। विशेष रूप से जहॉ पर दलित रहते है वहॉ पर सरकारी स्कूल एंव कॉलेजो की जनसंख्या थोडी होती है वहॉ पर सरकारी शिक्षण संस्थाएं नही है अतः सरकारों से विशेष अग्रह है कि वहॉ पर सरकारी शिक्षण संस्थाओं के स्थापित किया जाये इससे आधी समस्या अपने आप ही समाप्त हो जायेगी। मूल अधिकारो में अनुच्छेद 21अ व मौलिक कर्तव्य में अनुच्छेद 51अ बिन्दु संख्या 11 में शिक्षा के अधिकार एवं कर्तव्य को जोड़ा गया है यह सराहनीय कदम है। शिक्षा इस प्रकार की हो कि जिसमें किसी धर्म विशेष,क्षेत्र विशेष एंव जाति विशेष श्रेणीवाद को आधार न बनाये। पाठयक्रम मे धर्म निरपेक्षता का आवरण हो। वर्तमान सरकारें इसी प्रकार का प्रयास कर रही है, जो सराहनीय है परन्तु वे अभी भी पुर्ण रूप से सफल नहीं हो पायी है शिक्षा को मौलिक अधिकार एंव कर्तव्य में स्थान दिया गया है।

राजनीतिक दृष्टि से सुधार हो

दलितों एवं उच्च वर्गों के बीच जो घटनाएँ आये दिन घटित रहती है, वे सब गन्दी राजनीति का परिणाम है। इसमें दलितों की नहीं बल्कि उच्च वर्गों के मानवाधिकारों का भी उल्लघंन होता है, यह भारत हमारा है और हम भारत की गन्दी राजनीति को तभी सुधार सकते है जब राजनीति में से भ्रष्टाचार, भाईभतीजावाद, गुण्डागर्दी, तोड़फोड़, आतंक फैलाना दुष्प्रचार करने इत्यादी को दुर कर सके। साम्प्रदायिकता को राजनीति से दूर रखे। चुनाव में राजनेता दलितों के वोट बंटोरते दिखाई देते हैं, जिससे कि दलितों को भी गन्दी राजनीति में घसीटते दिखते हैं। अभी सर्वोच्च न्यायालय मे निर्णयोंनुसार अपराधी व अपराधीकरण में लिप्त जिन्हें न्यायालय ने दोषी पाया है। उसे चुनाव में खड़े होने पर रोक लगा दी है और न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि किसी जाति, धर्म इत्यादी के आधार पर कोई सभा का आयोजन नहीं किये जाने पर रोक लगाई है यह निर्णय वास्तव में स्वागत योग्य है।

चुनाव दलों को चुनावों में कंलक रहित,शिक्षित लोगों को ही उम्मीदवारों के लिये टिकट दी जानी चाहियें। जिस क्षेत्र से व्यक्ति निर्वाचित होता है, उस क्षेत्र का यदि वह विकास कार्य नहीं करवाता है तो उसे जनता को वापस हटाने का अधिकार भी होना चाहियें। ऐसा केवल अभी राजस्थान की नगरीय संस्थाओं तथा पंचायती राज में लागू हुआ है, इसको राज्य विधानसभाओं व लोकसभा के क्रमशः विधायकों व सांसदों पर भी लागू किया जावें। जिससे पुरे देश का सर्वांगिण विकास हो सके।

सामाजिक दृष्टि से सुधार हो

दलितों में बाल विवाह, दहेज प्रथा, मृत्यु भोज, बहूविवाह प्रथा, पर्दा प्रथा, निरक्षता, जागरूकता का अभाव देखने को मिलता है। दलितो कों इन कुप्रथाओं को रोकना होगा, साथ की अच्छी शिक्षा प्राप्त कर और अपने आप को सुधारे और उच्च वर्गों की अच्छी संस्कृति को ग्रहण करें। इसलिये सबसे ज्यादा जरूरी है, शिक्षा को बढ़ावा दें और बालिका शिक्षा को महत्व प्रदान करें। जिससे ये समस्यायें व कुप्रथायें अपने–आप सुधार हो जायेगा।

नौकरशाही के बढ़ते अकुंश को दूर करना

भारत में आज लालफिताशाही की सेना खड़ी है, जो कि कार्य नहीं करते और जनता को अपने कार्य करवाने में बाधा आती है, नौकरशाही में सुधार की आवश्यकता है। सतर्क,चुस्त, कार्य के प्रति लगाव हो, तभी मानवाधिकारों की रक्षा की जा सकती है, सेनारी (जहानाबाद) का हत्याकाण्ड पिछड़ों के लिये अभिशाप है, इसका कारण भूमि का वर्गीकरण नोकरशाहों पास होता था इसके लिये सरकारों को विशेष प्रयास कर नौकरशाहों से सही समय पर सही कार्य करवाने का प्रयास करना चाहिये। राजस्थान सरकार ने कार्यो को निश्चित समय पर करने पर अधिनियम बनाया है, जिसमें जनता को राहत मिली है। कार्य सही समय पर व सूचारू होने लगा है।

सरकारों की नीतियों में सुधार हो

सरकार अपनी नीतियों को इस प्रकार से तय करे कि किसी के साथ किसी प्रकार का भेदभाव न हो। तभी दलितों के मानवाधिकरों की रक्षा हो सकती है। नक्सलवाद, उग्रवादी, आंतकवादियों को कठोर दण्ड का प्रावधान किया जाना चाहियें,साथ ही इसके लिये भड़काने वालों को भी आजीवन कारावास दें। दलों को दंगे/ फसाद व सम्प्रदायिकता भड़काने वाले को टिकट नहीं देना चाहियें व सरकार गठन के समय ऐसे व्यक्ति को कोई पद नहीं देना चाहिए, चाहे वो जीत कर क्यों न आया हो उस पर अपराध का कैस दर्ज हो तो भी उसे किसी पद पर नहीं रखना चाहियें। इससे राजनीति में अपराधीकारण कम होगा। सरकार बनाते समय दलितों को

भी कुछ पद देने चाहियें। आज तक भारत की गठित सरकारों में दलितों स्थान दिया गया है, साथ राजस्थान जैसे राज्य में भी सरकार के गठन के समय मन्त्रिमण्डल में दलित समुदाय के विधायक को मन्त्री पद दिया गया। यह भारत जैसे देश के लिये गौरव की बात है। सरकारों द्वारा अन्य संगठनों से भी दलितों के लिये सहयोग प्राप्त करते रहना चाहिए। सरकार इस बात को महत्वपूर्ण मानती है दलितों को संविधान और कानून के अंतर्गत जो सुरक्षायें दी गई उन्हें और प्रभावी ढंग से लागू करने के लिये संस्थागत व्यवस्थाएँ की जाएँ, जिसमें दलितों के मन में नये विश्वास व नई आशाएँ पैदा की जा सके।

भौगोलिक विषमताओं को दूर करना

भारत में 1956 में भाषीय आधार पर 14 राज्यों का गठन हुआ, उसके बाद आज तक भाषिय व अन्य आधारों पर 29 राज्यों का गठन हो गया है। भारत के संविधान की प्रस्तावना में 42 वें संविधान संशोधन,1976 द्वारा तथा अखण्डता शब्द जोड़ा गया है। जिससें कोई आन्तरिक या बाहरी तत्वों से भारत की अखण्डता को कोई खतरा उत्पन्न न हो।

भारत मे क्षेत्रिय विषमताऐं है परन्तु केन्द्र सरकार को चाहिये की वह सभी क्षेत्रों का समान सहयोग एंव विकास करें और राज्य सरकारों को भी ऐसा ही प्रयास अपने राज्य के सन्दर्भ में करना चाहियें। जिससे नक्सलवाद जैसी घटनाऐं बन्द हो।

निष्कर्ष

दलितों के मानवाधिकारों के लिये यह अधिक आवश्यक है कि छोटे–छोटे समूहों का विकास है, जो समय–समय पर विभिन्न समूहों के लिये मानवधिकारों, मानवीय न्यूनतम आवश्यकताओं और हिंसा के विरूद्ध कार्य कर सके। यदि ऐसा नहीं होता है तो मानवाधिकारों की अवहेलना और अभावों की दुनिया का विस्तार होगा। भारत जैसे पिछड़े समाज में जहॉ न्यूनतम जनतांत्रिक अधिकारों तक के लिये पल–पल संघर्ष करना पड़ता है। जहाँ नागरिक अधिकारों की चेतना अन्यन्त दयनीय है और मानवाधिकारवादियों को ढेर सारे दुश्प्रचार, विवादों का सामना करते हूए कानून के राज्य के लिये संघर्ष करना पड़ रहा है, जिसके लिये कोई रास्ता नहीं है कि लोकतांत्रिक संस्थाओं को जमीनी स्तर पर मजबूत करने के अभियान को अपने हाथ में ले। नगरीय संस्थाओं एंव पंचायत स्तर पर इनमें निवास करने वाले नागरिकों को विकास कार्यों के खर्चों का ब्यौरा मांगने का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए। सूचना के अधिकार तहत ऐसा होना तय हुआ है। इतिहास के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि जहां मानवाधिकारों का घोर उल्लघंन किया गया है, वहां आंतकवादी गतिविधियों व नक्सलवादी गतिविधियों का जन्म भी हुआ और गृह युद्ध भी हुए है। इन सभ्यताओं को रोकने के लिये हम सबका कर्तव्य है कि न तो हम मानवाधिकारों का उल्लघंन करे और न ही होने दे। विश्व शान्ति और हमारे अपने अस्तित्व के लिये हम मानवाधिकारों का पालन एवं उनकी रक्षा करें। अल्पसंख्यक हो या बहुसंख्यक इन्हें मिलजूल कर रहना चाहिये और भारत की सदियों पुरानी सभ्यताओं एवं संस्कृति का विकास करना चाहिये और आधुनिकता के अच्छे आयामों को ग्रहण करतें रहें तभी हमारे देश का विकास हो सकेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Desai, I.P., Untouchability in Rural Gujarat, Bombay: Popular Prakashan.*
2. *Despande. V., Educational Planning: Some Aspects of Protective Discrimination in G.S. Sharma(ed.) Educational Planning, Its LegalAnd Constitutional Implication in India Bombay: N.M. Tripathy*
3. *Baxi U. (ed), (1987), the Rights to be Human, India Internationa Centre, New Delhi.*
4. *Syed, M.H. (2003), Human Right: The New Era, (Kilaso Book, New Delhi)*
5. *Tapan Biswal(2015), Human Rights: ZenderAnd Environment(Viva Books, New Delhi)*
6. *Kamala (2000), Understanding Gender, Kali for Women, New Delhi.*